नियमसार, गाथा १७२।

जाणंतो पस्संतो ईहा-पुव्वं ण होइ केवलिणो।
केवलणाणी तम्हा तेण दु सोऽबंधगो भणिदो।।१७२।।

नीचे हरिगीत

जानें तथा देखें तदपि इच्छा विना भगवान है।
अतएव केवलज्ञानी वे अतएव ही निर्बन्ध है॥१७२॥

इस ओर टीका। इस ओर टीका है। ३४६ पृष्ठ पर टीका है।

टीका : यहाँ, सर्वज्ञ वीतराग को वांछा का अभाव होता है, ऐसा कहा है। कितने ही केवलज्ञानी को ऐसा मानते हैं कि पहले समय में ज्ञान होता है और दूसरे समय में दर्शन होता है। यह बात सत्य नहीं है। इसलिए यह बात करते हैं। देव अरिहन्त, उनका वास्तविक स्वरूप जाने बिना उसकी मान्यता सत्य होती नहीं। अरिहन्त सर्वज्ञ किसे कहते

हैं ? और उन सर्वज्ञ को इच्छा नहीं होती। वाणी निकलती है। वाणी के कारण वाणी निकलती है। वाणी स्वयं नहीं करते। आहाहा! क्योंकि वाणी जड़ है और स्वयं चेतन है। तो चेतन वाणी को नहीं करता। वाणी वाणी के कारण वाणी निकलती है परन्तु उनकी इच्छा नहीं है। वाणी निकलने पर भी इच्छा नहीं है। यह बात यहाँ करते हैं।

यहाँ, सर्वज्ञ वीतराग को वांछा का अभाव होता है, ऐसा कहा है। उन्हें वांछा नहीं है। किसी जगह ऐसा बोले या ऐसा बोलूँ, ऐसी वृत्ति और इच्छा केवली को नहीं होती। आहाहा! केवलज्ञान अर्थात् ? एक समय में तीन काल, तीन लोक प्रत्यक्ष जाने और जिसमें वह जानते हैं, उस प्रकार से वहाँ सामने पर्याय होती है। जैसा भगवान देखते हैं, तद्नुसार सामने जड़-चैतन्य की पर्याय होती है। आहाहा! उस पर्याय का फेरफार करने में कोई समर्थ नहीं है। यह भगवान वांछारहित है। उन्हें वांछा नहीं है। जानते हैं तीन काल-तीन लोक, परन्तु इच्छा नहीं है।

भगवान अरहन्त परमेष्ठी... एक तो भगवान कहा, दूसरे अरहन्त कहा, तीसरे परमेष्ठी। **सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले...** क्या कहते हैं ? जरा नय कहते हैं। सादि-अनन्त केवलज्ञान स्वभाव की सादि हुई। केवलज्ञान कहीं अनादि का नहीं है। शक्तिरूप है। प्रगटरूप है तो प्रगटे तब होता है। सादि—केवलज्ञान उत्पन्न होने की आदि और फिर उसका नाश नहीं होता, अनन्त काल रहता है। सादि-अनन्त। आहाहा! इसका विश्वास अन्तर में बैठना... वैसे तो लोगों ने भाषा अनन्त बार की है। ग्यारह अंग भी अनन्त बार धारण किये, परन्तु अन्तर में आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। वह ज्ञानस्वरूप पूर्ण होवे तो सर्वज्ञ होता है। वह स्वयं से होता है, पर से नहीं और वह सर्वज्ञ होने पर भाषा आती है। भाषा आती है परन्तु परिणामपूर्वक नहीं। आहाहा! छद्मस्थ को नीचे परिणामपूर्वक भाषा आती है। वह परिणाम बन्ध का कारण है। भगवान को परिणामपूर्वक भाषा नहीं तो उन्हें बन्ध का कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? यह यहाँ कहते हैं।

सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूत-व्यवहार से... आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह केवलज्ञान, वह व्यवहारनय है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आत्मा सनातन अनादि, अनादि-अनन्त, वह निश्चय है और केवलज्ञान तो नया उत्पन्न हुआ, नयी दशा उत्पन्न हुई तो वह व्यवहारनय का विषय हो गया। आहाहा! यह तो णमो अरिहन्ताणं... णमो सिद्धाणं किया करे, परन्तु क्या वस्तु है और क्या स्वरूप है, (यह) जाने बिना जिन्दगी

ऐसी की ऐसी चली जाती है। अनन्त काल गया। आहाहा! अनन्त-अनन्त अवतार प्रत्येक के किये—तिर्यंच के, नरक के, यह मनुष्य हुआ, दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ परन्तु आत्मज्ञान में ध्यान नहीं दिया। इसके अतिरिक्त क्रियाकाण्ड में रुक गया और उसमें धर्म माना। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, परमात्मा को **सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूत -व्यवहार से...** आहाहा! यह क्या कहते हैं? केवलज्ञान शुद्ध है और सद्भूत अपनी पर्याय में है और पर्याय है तो व्यवहार है। तो शुद्ध सद्भूतव्यवहार। शुद्ध सद्भूतव्यवहार का बड़ा अर्थ है। आहाहा! इन तीन शब्दों का बड़ा अर्थ है। शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार। केवलज्ञानी परमात्मा को ज्ञान जो है, वह शुद्ध है परन्तु अपनी पर्याय में है तो सद्भूत, परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से है व्यवहार। समझ में आया? आहाहा! अभी तो केवलज्ञान व्यवहार, उसके बदले निचला व्यवहार किया करो और उससे नीचे तुम्हें (धर्म) होगा। यह सब बात एकदम विपरीत है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** भगवान जो अरिहन्त हैं, वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार... आहाहा! निश्चय से नहीं, तथा अशुद्ध से नहीं। शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, पर्याय। वह पर्याय प्रगटी है, वह केवलज्ञान की पर्याय है। केवलज्ञान गुण नहीं है। आहाहा! केवलज्ञान भी एक समय में नाश होता है। आहाहा! एक समय पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय दूसरे समय में नाश होती है। दूसरे समय में वैसी-वैसी होती है, परन्तु वह नहीं। पहले समय में जो केवलज्ञान है, वह केवलज्ञान दूसरे समय में नहीं। तीसरे समय में वैसी होती है, परन्तु वह नहीं। ऐसा विचार करने को निवृत्ति कब है? धन्धे के कारण अकेला पाप पूरे दिन। आहाहा!

यहाँ से कहाँ जाना है? यह देह तो छूट जाएगी। जाना तो अवश्य है। यह तो अनादि-अनन्त जीव है। देह छूट जाएगी। कहीं अवतार तो लेना है। कहाँ जाएगा? कहाँ जाएगा? इसकी कुछ चिन्ता नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो केवलज्ञान की श्रद्धा कराने को अरिहन्त परमात्मा त्रिलोकनाथ का ज्ञान, वह भी व्यवहार है। है न? **शुद्धसद्भूत -व्यवहार से केवलज्ञानादि...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसे अनन्त चतुष्टय जो भगवान को प्रगट होते हैं, ऐसे आदि अनन्त गुण की प्रगट दशा। **शुद्ध गुणों के आधारभूत...** आहाहा! **केवलज्ञानादि शुद्ध**

गुणों के आधारभूत होने के कारण विश्व को निरन्तर जानते हुए भी... आहाहा! एक तो कहते हैं, अपने गुणों के आधार से है। वह कोई विश्व के आधार से नहीं। आहाहा! भगवान का ज्ञान, अरिहन्त का केवलज्ञान विश्व की किसी चीज़ के आधार से नहीं है। अपने गुण के आधार से प्रगट होता है। आहाहा!

विश्व को निरन्तर जानते हुए भी और देखते हुए भी, उन परम भट्टारक केवली को मनप्रवृत्ति का (मन की प्रवृत्ति का, भावमनपरिणति का) अभाव होने से... आहाहा! भगवान केवली को मन है। जड़मन, परमाणु हृदय में है, परन्तु उस मन की प्रवृत्ति नहीं है। आहाहा! अभी तो केवली की, देव की पहिचान कराते हैं। देव ऐसे होते हैं। उन देव की पहिचान करे तो कहीं समकित होता है, ऐसा नहीं है। वह कहीं धर्म हो, ऐसा नहीं है। केवली की पहिचान करे तो अभी पुण्य होता है, धर्म नहीं। आहाहा! जन्म-मरणरहित होने के उपाय का प्रकार अलग है। यह तो मात्र देव कैसे होते हैं और उनकी श्रद्धा दूसरों की अपेक्षा सत्य किस प्रकार है, वह बतलाने के लिये यह कहते हैं और जिसे आत्मा का निश्चय हुआ है, उसे केवलज्ञानी ऐसे होते हैं, ऐसी व्यवहार श्रद्धा होती है। आहाहा! कहो, हसमुखभाई! यह तो धूल के कारण विचार किया ही न हो। पूरे दिन पैसा, धूल और मिट्टी।

मुमुक्षु : धन्धे के बिना दाने नहीं आते।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक दाना दूसरे दाने को स्पर्श नहीं करता, प्रभु! सुनना कठिन बात है। एक दाना दूसरे दाने को स्पर्श नहीं करता। यह हाथ दाने को स्पर्श नहीं करता। भाई! अभी तत्त्व की खबर नहीं होती। यह हाथ है, वह दाने को छूता नहीं—स्पर्श नहीं करता क्योंकि वह अलग चीज़ है, यह अलग चीज़ है। एक दाने में दूसरे दाने का अत्यन्त अभाव है, तो एक दाना दूसरे दाने को भी स्पर्श नहीं करता। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! गजब! कहाँ जाना? एक दाना दूसरे दाने को—छूता नहीं—स्पर्श नहीं करता। तीसरी गाथा में है। समयसार की तीसरी (गाथा)। आहाहा!

एक द्रव्य जो वस्तु है, वह अपना गुण और पर्याय धर्म जो शक्ति है, उसे चुम्बन करता है परन्तु परद्रव्य को कभी तीन काल में चुम्बन नहीं करता। आहाहा! यह शरीर दूसरे शरीर को छूता नहीं—स्पर्श नहीं करता। यह वाणी होंठ को स्पर्श नहीं करती और कान को स्पर्श नहीं करती। गजब बात है, बापू! वीतराग का मार्ग कहीं रह गया और कहीं चला दिया है। भगवान ने तो अनन्त द्रव्य देखे हैं। केवलज्ञानी ने अनन्त द्रव्य (देखे हैं)।

तो अनन्त कब रहे ? कि अनन्त अपनी-अपनी पर्यायसहित रहे। किसी की पर्याय की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पर भी पर्याय बिना नहीं रहता। पर्याय अर्थात् अवस्था। प्रत्येक द्रव्य अवस्था बिना नहीं रहता। किसी भी समय में अवस्था बिना नहीं रहता। आहाहा!

यह लकड़ी है, वह अँगुली के-हाथ के आधार से नहीं है। गजब है, प्रभु! मार्ग कठिन, बापू! हाथ के आधार से यह नहीं है। उसमें-पर्याय में छह गुण हैं। लकड़ी की एक पर्याय में, एक अवस्था में छह गुण हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। यह बड़ी लम्बी बात है। आहाहा! वीतराग का एक अक्षर अलौकिक है। दुनिया पागल कहे ऐसा है। दुनिया पागल। पागल भगवान की वाणी को पागल जैसा कहता है। इसे स्पर्श नहीं करता - यह अँगुली इस लकड़ी को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! कैसे जँचे ?

दाल, भात, रोटी दाढ़ को स्पर्श नहीं करते। दाढ़ को आत्मा स्पर्श नहीं करता। दाढ़ रोटी के टुकड़े को स्पर्श नहीं करती। गजब बात है, प्रभु! आहा! वीतरागमार्ग कोई अलग प्रकार का है। उसकी खबर ही नहीं है। एक-एक द्रव्य स्वतन्त्र है। यह केवलज्ञान की बात चलती है। केवलज्ञानी को वांछा नहीं है। भाषा आती है परन्तु अपने आनन्द में हैं। उनका पर के ऊपर लक्ष्य नहीं है। आहाहा!

प्रत्येक पदार्थ अपने में रहता है। परपदार्थ को स्पर्श नहीं करता। यह हाथ इस पुस्तक को छूता है—स्पर्श करता है ? नहीं। आहाहा! दुनिया से तो अलग है। दुनिया की बात... शरीर को आत्मा ने कभी स्पर्श नहीं किया। अनन्त काल हुआ, अनन्त शरीर हुए, अनन्त जन्म-मरण हुए, परन्तु आत्मा ने शरीर को स्पर्श नहीं किया। कैसे बैठे बात ? आहाहा! तथा यह शरीर भी आत्मा को नहीं छूता, स्पर्श नहीं करता। दोनों स्वतन्त्र अपने-अपने कारण से पर्याय में परिणमते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार यह भगवान भी केवलज्ञान की पर्याय में स्वयं के कारण से परिणमता है। यह परिणमने में वांछा-वांछा है नहीं। आहाहा! साक्षात् भगवान विराजते हैं। सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। बीस तीर्थंकर, लाखों केवली विराजते हैं। आहाहा! समवसरण में वाणी निकलती है। वाणी सुनने को इन्द्र आते हैं और जंगल में से बाघ, सिंह और सर्प आते हैं। बाघ, सिंह और सर्प। वाणी निकलती है, उसमें इच्छा नहीं है। वाणी के कारण से वाणी निकलती है। मैं दूसरों को वाणी से समझाऊँ, यह बात केवली

को नहीं है। आहाहा! और निचलीदशा में मैं दूसरे को समझाऊँ, ऐसे परिणाम (होते हैं, वे) राग के परिणाम हैं। आहाहा! कठिन बात है जगत को। यह राग है - दूसरे को समझाने का भाव विकल्प है, विकल्प है न? वह राग है। छद्मस्थ को परिणामपूर्वक वाणी निकलती है, इसलिए उसे बन्धन कहते हैं। आहाहा! कहाँ का कहाँ!

अल्पज्ञ प्राणी को परिणाम—भावपूर्वक वाणी निकलती है, इसलिए उसे राग है और बन्धन है। केवली को इच्छापूर्वक वाणी नहीं निकलती, इसलिए उन्हें राग नहीं है और बन्धन नहीं है। आहाहा! यह केवली अभी णमो अरिहन्ताणं-पहला पद अभी कितना है, इसकी खबर नहीं होती। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... पहाड़ा बोलता जाता है। इसका अर्थ क्या? आहाहा! यह बात कहते हैं, प्रभु!

केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के आधारभूत होने के कारण विश्व को निरन्तर जानते हुए भी और देखते हुए भी,... आहाहा! **उन परम भट्टारक केवली को मनप्रवृत्ति का (मन की प्रवृत्ति का, भावमनपरिणति का) अभाव...** आहाहा! हृदय में मन है। उस मन की प्रवृत्ति नहीं है। केवली को मन की प्रवृत्ति नहीं है। वाणी की नहीं है, देह की (प्रवृत्ति) नहीं है। देह, वाणी और मन, वह जड़ है। जड़ की अवस्था जड़ से होती है। जड़ की अवस्था आत्मा से तीन काल में नहीं होती। आहाहा! यह अँगुली इस पुस्तक को छूती है? नहीं। आहाहा! सत्य बात सुनना कठिन पड़ गयी। दुनिया आड़े रास्ते पर चढ़ गयी है।

सर्वज्ञ भगवान ने जितने पदार्थ देखे हैं, उन सब पदार्थों की पर्याय अपने काल में, अपने से पर की अपेक्षा बिना होती है। आहाहा! यह तो समयसार की तीसरी गाथा में आया न? प्रत्येक पदार्थ, अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (असंख्य कालाणु), छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। उनमें एक भी द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। आहाहा! यह कैसे जँचे? यह केवली ने कहा है। वांछा बिना भी केवली की वाणी इस प्रकार से आयी है। उसे सच्चा देव माना कहलाता है। परन्तु जिसे देव की ही खबर नहीं कि देव क्या और क्या केवलज्ञान और उन्होंने क्या कहा? क्या कहा, खबर नहीं होती। आहाहा!

रोटी के दो टुकड़े करने की शक्ति आत्मा में नहीं है। वे टुकड़े जड़ से होते हैं। आत्मा माने कि मुझसे हुए हैं, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। पण्डितजी! दुनिया से अलग बात

है। आहाहा! एक रोटी के दो टुकड़े! अन्दर आहार लेना, वह तो है ही नहीं। आत्मा आहार नहीं ले सकता। यह तो पहले अपने आ गया है। आहार जड़ है। वह जड़ तत्त्व है। भगवान आत्मतत्त्व है। दो तत्त्व के बीच बहुत अन्तर है, अनन्त अभाव है। एक तत्त्व, दूसरे तत्त्व को स्पर्श नहीं करता तो दूसरे तत्त्व का कुछ कर सके, (यह तो कहाँ से हो?) आहाहा! यह तो पूरे दिन दुकान पर बैठा हो तो... ऐई मनसुख! मैंने किया... मैंने किया... यह किया... हमारी भी दुकान थी न पालेज में। वहाँ दुकान है। हमारी बुआ का लड़का है। भागीदार है। अभी बड़ी दुकान है। दुकान की पैड़ी पर बैठे थे, ऐसा चलाया, ऐसा चलाया। यह ग्राहक, यह... यह... मानों सब क्रिया मुझसे होती है। आहाहा! आत्मा तो अपने निर्मल परिणाम करे या मलिन परिणाम करे, इसके अतिरिक्त तीसरी चीज़ नहीं कर सकता। आहाहा! दुनिया से अलग चीज़ है, भाई! आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

मनपूर्वक प्रवृत्ति भगवान की नहीं है। वाणी निकलती है तो भी मनपूर्वक नहीं। आहाहा! उन्हें सर्वज्ञदेव कहते हैं। सर्वज्ञदेव... सर्वज्ञदेव... ऐसे भाषा में माने (परन्तु) उनका स्वरूप तो जाने नहीं।

केवली को मनप्रवृत्ति का (मन की प्रवृत्ति का, भावमनपरिणति का)... उसका अर्थ किया। एक द्रव्यमन है, एक भावमन है। यहाँ हृदय में द्रव्यमन रजकण है। जैसे होंठ है, शरीर है, मिट्टी, वह धूल है, ऐसी यह हृदय में धूल है। मन की धूल है। जैसे यह मिट्टी धूल है न... पूरा शरीर सब धूल है। तुम्हारे पैसे-बैसे सब धूल-मिट्टी है। यह मिट्टी मेरी है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! ऐसी बात है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्वामी हो - मालिक हो। यह मेरे पैसे हैं, मैंने यह पैसे का ऐसा धन्धा किया, भगवान कहते हैं। मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, मूर्ख है। हम कहते हैं, उस ज्ञायकतत्त्व की उसे खबर नहीं है। तत्त्व का स्वरूप क्या है, इसकी उसे खबर नहीं है। वह यहाँ कहते हैं।

भावमन नहीं है। भगवान को द्रव्यमन तो है। हृदय में अनन्त परमाणु का (बना हुआ द्रव्यमन है), परन्तु उससे प्रवृत्ति नहीं है और भावमन से प्रवृत्ति नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। भावमन में संकल्प-विकल्प होता है। आहाहा! यह तो अभी अरिहन्तदेव प्रथम णमो अरिहंताणं की पहिचान कराते हैं। **अभाव होने से इच्छापूर्वक वर्तन नहीं होता;...** भगवान को इच्छापूर्वक हलन-हलन इच्छापूर्वक नहीं है। बोलना इच्छापूर्वक नहीं है। आहाहा!

उनके पैर स्वयं से चलते हैं, आत्मा की प्रेरणा से पैर नहीं चलते। यहाँ भी जो पैर इस जमीन पर चलते हैं... दुनिया में कठिन बात है, प्रभु! वे पैर जमीन को स्पर्श नहीं करते। यह पैर चलते हैं। तो वे पैर जमीन को स्पर्श नहीं करते। जमीन उन्हें स्पर्श नहीं करती। कठिन है। दुनिया में पागल... आहाहा! यह हम प्रत्यक्ष चलते हैं और देखते हैं न, प्रभु! सुन-सुन। एक चीज़ और दूसरी चीज़ के बीच अन्योन्यअभाव है। पैर के परमाणु मिट्टी-धूल और यह नीचे परमाणु की धूल, प्रत्येक परमाणु-परमाणु के बीच अन्योन्यअभाव है। अभाव में एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। आहाहा! गजब बात है। लोग तो पागल ही कहे। हसमुखभाई! उसमें पैसेवाले, करोड़पति और अरबपति हों... आहाहा! सिर फिर जाए। करोड़ और ऐसा धूल भी नहीं है। यहाँ मन जड़ है, वह तेरा नहीं, वाणी तेरी नहीं, देह तेरी नहीं। वह तो हड्डियों की चीज़ है। वह अजीव और मिट्टी की चीज़ है। वह तो श्मशान में राख होगी। आहाहा! और तू उड़कर चला जाएगा कहीं। भानरहित कुछ करेगा नहीं, आत्मा की कुछ पहिचान नहीं करे (तो) मरकर कहीं चौरासी के अवतार में चला जाएगा। वहाँ कहीं कुदरत मदद नहीं करेगी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान को **इच्छापूर्वक वर्तन नहीं होता; इसलिए वे भगवान 'केवलज्ञानी' रूप से प्रसिद्ध हैं;...** आहाहा! इच्छापूर्वक बोलने, चलने की प्रवृत्ति भगवान को नहीं होती। वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। यह वाणी भी अभी वाणी से निकलती है, वह आत्मा से नहीं। इस होंठ से भी नहीं। वाणी के परमाणु हैं, उनसे वाणी निकलती है। आहाहा! ऐसा समझना। संसार में गले तक घुस गया हो। पूरे दिन यह होली सुलगती है। भले पाँच-दस हजार दिन के पैदा होते हों। उसमें तो ऐसा हो जाए कि... आहाहा! मानो हम तो कहीं चढ़ गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक परमाणु को दूसरा परमाणु स्पर्श नहीं करता। आत्मा केवलज्ञानी भगवान उस मन की प्रवृत्ति से काम नहीं लेते। आहाहा! उन्हें इच्छा की वांछा और भावमन है ही नहीं। उन्हें अरिहन्तदेव कहते हैं। आहाहा! परमात्मा विराजते हैं। सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ साक्षात् अभी महाविदेह में विराजते हैं। समवसरण होता है। इन्द्र, बाघ, सिंह व्याख्यान में जाते हैं। भगवान की वाणी मन की प्रवृत्ति से नहीं है तथा मैं बोलता हूँ, इसलिए यह वाणी है, ऐसा भी नहीं है। यह सभा भराई है, इसलिए मैं बोलूँ,

ऐसा भी नहीं है। आहाहा! भारी कठिन काम, प्रभु! वाणी जड़ है। प्रभु चेतन भिन्न है। वाणी के एक-एक परमाणु स्वतन्त्र जड़ है। एक-एक परमाणु जड़ है। दूसरे परमाणु का कुछ कर नहीं सकता। आत्मा उनका कर सके, यह मूर्ख की मान्यता अनादि की है। उसके कारण यह चौरासी के अवतार में भटकता है। चौरासी के अवतार चींटी, कौवा, कुत्ता, सूकर के अनन्त अवतार किये, बापू! आत्मा अनादि-अनन्त है। देह नाश को प्राप्त होगी। देह नाश होकर आत्मा कहीं मर नहीं जाएगा। जाएगा कहीं भटकने। आहाहा! और वापस मनुष्यपना अनन्त काल में मिलना मुश्किल है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। अभी केवलज्ञानी का निर्णय कर। केवलज्ञानी को **इच्छापूर्वक वर्तन नहीं होता; इसलिए वे भगवान 'केवलज्ञानी' रूप से प्रसिद्ध हैं;...** इसलिए वे भगवान हैं। इस कारण से। इच्छापूर्वक नहीं, मन की प्रवृत्ति से नहीं, भाषा (नहीं), इसलिए भगवान केवलज्ञान में प्रसिद्ध हैं। **और उस कारण से वे भगवान अबन्धक हैं।** इच्छा बिना वाणी निकलती है। अनन्त तीर्थंकर हुए। वर्तमान महाविदेह में मौजूद विराजमान हैं। लाखों केवली विराजते हैं। सबकी इच्छा बिना वाणी निकलती है और उन्हें इच्छा नहीं है, इसलिए बन्धन भी नहीं है। मैं उन्हें समझाऊँ, ऐसी इच्छा भगवान को नहीं है। आहाहा! सभा भरी है, इसलिए मैं भाषण करूँ, प्रभु! यह इच्छा है। यह राग भगवान को नहीं होता। आहाहा!

प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं परन्तु अब तुझे खबर नहीं। तू अन्दर कौन है? यह केवलज्ञानी का पुत्र तो केवलज्ञान अन्दर है। इसलिए यहाँ कहते हैं, केवलज्ञानी ऐसे होते हैं। और तू भी केवलज्ञानी ऐसा होगा। यदि इस प्रकार से अनुभव किया कि आत्मा राग से, पर से अत्यन्त भिन्न है, अपने आनन्द का स्वाद लेनेवाला है। आत्मा अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (लेनेवाला है)। यह विषय का स्वाद है, वह तो जहरीला स्वाद है। जहर का प्याला पीता है। आहाहा! और यह धर्म करे, तब अन्दर से अमृत का प्याला आता है। उस अमृत के प्याले की अमृत पूर्ण दशा है, वह केवलज्ञान है। आहाहा! वे केवलज्ञानी बतलाकर देव की श्रद्धा कराते हैं कि देव ऐसे होते हैं। जिन्हें इच्छा नहीं है। समवसरण भरावे या वाणी करूँ या बोलूँ या प्ररूपण करूँ। आहाहा! वाणी भी वे नहीं करते न! वाणी जड़ है। आत्मा चैतन्य जड़ को नहीं कर सकता, स्पर्श नहीं करता। चैतन्य, भाषा को स्पर्श नहीं करता। यह ऐसी बात! अर..र..! जगत कहाँ? वस्तुस्थिति कहाँ? परमात्मा सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ तत्त्व कहाँ और दुनिया कहाँ मानकर भटकती है। चौरासी के अवतार में अनन्त काल से भटकती है।

नरक और निगोद, सूकर और कौवे के अवतार कर-करके अनन्त-अनन्त किये हैं। अनादि काल का है। यह भव कहीं पहला नहीं है। इस भव से पहले भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... कहीं अन्त नहीं, इतने भव (किये हैं)। आहाहा! इस सत्य-सच्चे ज्ञान बिना, सत्य ज्ञान बिना इस चौरासी लाख में भटकना पड़ा। यह कहा।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (५२वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु।
जाणण्णवि ते आदा अबंधगो तेण पण्णत्तो।।

ऊपर श्लोक है। उसका अर्थ नीचे है। **(केवलज्ञानी)...** भगवान, सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदेव **पदार्थों को जानता हुआ भी...** पदार्थों को जानते होने पर भी **उन-रूप परिणमित नहीं होता,...** आहाहा! शरीररूप, वाणीरूप, मनरूप भगवान परिणमित नहीं होते। आहाहा! क्योंकि अरूपी चैतन्य प्रभु भगवान अन्दर है। अरूपी। यहाँ भी इस देह को आत्मा स्पर्श नहीं करता। आत्मा ने देह को स्पर्श नहीं किया और देह ने आत्मा को स्पर्श नहीं किया। यहाँ भी (ऐसा है)। परन्तु यह कहाँ सुना है? हम मानो यह काम करते हैं, यह सब। आहाहा! अज्ञान और मूढ़ता अनादि काल की। अनन्त बार विपरीत किया है।

यहाँ कहते हैं **(केवलज्ञानी) आत्मा पदार्थों को जानता हुआ भी उन-रूप परिणमित नहीं होता,...** ज्ञेय जो जाननेयोग्य अनन्त हैं, उन्हें जानता होने पर भी जाननेयोग्य चीज़ रूप नहीं होता। क्या कहा? भगवान केवलज्ञानी परमात्मा; ज्ञेय अनन्त हैं, उन्हें जानता होने पर भी, ज्ञेय जानने पर भी उनरूप नहीं होते। ज्ञेय ज्ञेयरूप रहते हैं, ज्ञान ज्ञानरूप रहता है। आहाहा! अनन्त बल के धनी हैं न! भगवान तो अनन्त बल के धनी हैं। वह अनन्त बल का धनी कुछ नहीं कर सकता? कर सकता है अपने में। अनन्त पुरुषार्थ करके केवलज्ञान प्रगट किया। पर का एक रजकण भी बदलने की ताकत, एक तिनके के दो टुकड़े करने की ताकत आत्मा में तीन काल-तीन लोक में नहीं है। मानता है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं।

आत्मा पदार्थों को जानता हुआ भी उन-रूप परिणमित नहीं होता,... जानता है,

इसलिए उसरूप हो जाए, ऐसा नहीं होता। **उन्हें ग्रहण नहीं करता...** भगवान सर्व लोक को जाने, परन्तु ग्रहण नहीं करते। आहाहा! **उन-रूप परिणमित नहीं होता,...** उस जड़ को और चैतन्य को ग्रहण नहीं करते। भाषा को वे ग्रहण नहीं करते। आहाहा! यह प्रश्न वहाँ पालीताणा में उठा। केवली भाषा को ग्रहण करते हैं। पहले समय में ग्रहण करते हैं, दूसरे समय में छोड़ते हैं। तब। कितने वर्ष हो गये? कौन सा वर्ष? (संवत्) १९९५? १९९५ - ९५। १९९५ के वर्ष में गये थे न? यहाँ तो ४५ वर्ष हुए। सवा पैंतालीस। तब वहाँ गये थे। वैसे तो शरीर को ९१ वर्ष हुए। शरीर को ९१, सवा ९१ हुए। इस धूल को ९१ वर्ष (हुए)। आहाहा! तब वहाँ गये थे, तब वहाँ प्ररूपणा तो की थी। बड़ी सभा भरी है। गाँव में रामविजय और उनके आचार्य थे। (वे ऐसा कहते), ऐसा नहीं है। भगवान वाणी को पहले समय में ग्रहण करें, दूसरे समय में छोड़ें। कहा ग्रहे-ग्रहे बिल्कुल नहीं। जड़ को आत्मा ग्रहण नहीं करता और जड़ को आत्मा छोड़ता नहीं। यह १९९५ के वर्ष की बात है। ४२ वर्ष हुए। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ आया न? **उन-रूप परिणमित नहीं होता, उन्हें ग्रहण नहीं करता...** वाणी को आत्मा ग्रहण नहीं करता। अरे रे! ऐसी बातें! वाणी जड़ है। मन यहाँ है, वह जड़, मिट्टी, धूल है। भगवान चैतन्यस्वरूप उस धूल को स्पर्श नहीं ही करता। आहाहा! उन्हें परिणाम है ही नहीं। ग्रहण नहीं करता। मन आदि को भी भगवान ग्रहण नहीं करते। आहाहा! एक यथार्थ अन्दर ऐसा ज्ञानस्वरूप जँचे, उसे जन्म-मरण मिटे बिना नहीं रहते परन्तु यथार्थ—जैसा है वैसा। अपनी कल्पना कहीं भी रखकर माने, वह चौरासी के अवतार में भटक मरनेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वे पररूप तो परिणमित नहीं होते। उसे ग्रहण नहीं करते **और उन पदार्थोंरूप में उत्पन्न नहीं होता...** आहाहा! केवलज्ञानी अरिहन्त भगवान लोक को जानते हैं, परन्तु उस लोकरूप परिणमित नहीं होते। आहाहा! अपनी पर्याय में अपने से परिणमित होते हैं। पर को जानते-देखते हैं, वह भी व्यवहार है। अपने को जाने, उसमें लोकालोक ज्ञात हो जाता है। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ केवली परमात्मा ने जो आत्मा कहा, उस आत्मा को अन्दर में जाना, उसमें स्व और पर लोकालोक का ज्ञान अपने से अपने में होता है। उस परपदार्थ से नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म! जानने में परपदार्थ भी नहीं। जानने में यहाँ

ज्ञान उसके आत्मा का गुण है। यह ज्ञेय—जिसे जाने उसका वह (गुण) नहीं है। आहाहा!

आत्मा के अतिरिक्त जितने ज्ञेय हैं, भगवान से लेकर दूसरे कोई भी ज्ञेय, उस किसी ज्ञेय में इष्ट-अनिष्टता है नहीं। यह इष्ट है और यह अनिष्ट है, ऐसा ज्ञेय में नहीं है। आहाहा! ऐसा ज्ञेय का सब स्वभाव भगवान केवलज्ञान में एक समय में जानते हैं। परन्तु वह हेय है और यह उपादेय है, ऐसा भगवान को नहीं है। आहाहा! उनके भगवान तो जगत के कर्ता हैं। ईश्वरकर्ता। इनके भगवान वाणी के कर्ता, चलने के कर्ता। सब एक ही... आहाहा! यहाँ तो वाणी और शरीर का कर्ता भी आत्मा नहीं। आहाहा! जगत से उल्टा है। जगत उल्टा है, उससे यह उल्टा है। आहाहा!

एक समय में परमात्मा इच्छा बिना पर को जानने पर भी, पररूप परिणमित नहीं होते, पर को ग्रहण नहीं करते और पर में उत्पन्न नहीं होते। तीन बोल समझ में आते हैं? भगवान केवलज्ञानी परमात्मा तीन काल-तीन लोक को एक समय में जानते हैं। तथापि उस रूप परिणमित नहीं होते। पररूप नहीं होते। पररूप नहीं होते और उन्हें ग्रहण नहीं करते। आहाहा!

कहाँ आकाश अनन्त... अनन्त... आकाश। यह रहते हैं, वह तो असंख्य योजन में ही यह है। जड़-चैतन्य की स्थिति असंख्य योजन में है। पश्चात् अनन्त योजन दशों दिशा खाली.. खाली.. खाली.. खाली.. खाली.. आकाश। अनन्त आकाश चलते जाओ.. चलते जाओ.. कहीं अन्त नहीं। यह चौदह ब्रह्माण्ड है, वह तो चौदह राजू लोक में असंख्य योजन में ही है। पश्चात् अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आकाश है। उस सर्व को जानते हैं। आकाश अनन्त है, अमाप है। दसों दिशाओं में आकाश का अन्त कहाँ? चारों दिशा में आकाश अन्तरहित है। बीच में चौदह ब्रह्माण्ड राई जितना है। चौदह राजू लोक। इस आकाश को भी एक समय में जानते हैं। आहाहा! केवलज्ञानी एक समय में (जानते हैं)। उस आकाश का अन्त नहीं है। अन्त नहीं है, ऐसा अन्त नहीं है—ऐसे जानते हैं। अन्त नहीं है। अन्त है, ऐसा जानते हैं, ऐसा है नहीं। क्या कहा? आकाश का अन्त नहीं है। तो अन्त नहीं है, ऐसा जानते हैं। कहीं उसका अन्त है? अन्त कहाँ? आकाश के पश्चात् क्या? पश्चात् क्या? पश्चात् क्या? पश्चात् क्या? आहाहा! इन सबको जानते हैं, परन्तु उसरूप परिणमित नहीं होते, उसे ग्रहण नहीं करते, उसरूप उत्पन्न नहीं होते। आहाहा!

उसे अबन्धक कहा है। इसलिए भगवान को अबन्धक कहा है। भगवान हैं। देह है, भले वाणी निकलती हो। वाणी और शरीर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। अकेला शरीर अकेला है। भगवान को आहार नहीं, पानी भी नहीं, रोग नहीं, दवा नहीं, कुछ नहीं। आहाहा! एक शरीरमात्र है, वह स्थिति प्रमाण रहेगा। छूटेगा तब मोक्ष होगा। शरीरसहित होवे, उसे अरिहन्त कहने में आता है। महावीर आदि भगवान अभी सिद्धपद में हैं। अभी अरिहन्त पद में नहीं हैं। अभी अरिहन्त पद में भगवान (सीमन्धरस्वामी आदि) हैं। आहाहा!

भगवान जब शरीरसहित विचरते थे, तब भी अरिहन्त शरीरसहित केवलज्ञानी थे और उस महाविदेह में... आहाहा! भगवान विराजते हैं। वे भी शरीरसहित होने से शरीरसहित हैं। आहाहा! उनकी वाणी-बाणी कोई करते नहीं। वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। आहाहा! आत्मा के बिना वाणी निकलती है? इस दीवार में से निकलनी चाहिए। ऐसा प्रश्न आया है। यहाँ तो ४५ वर्ष हुए। यहाँ इस जंगल में सवा पैंतालीस वर्ष जंगल में हुए। तैंतालीस वर्ष में आये थे। तैंतालीस वर्ष में आये और सवा पैंतालीस हुए। ९१ चलता है। ९१-९१ माता के गर्भ में आये उसे कल ९२ वर्ष हो गये। जहाँ से-भगवान के पास से आये वहाँ से।

सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ थे। वहाँ से यहाँ आये हैं। वह दिन कल था। कल ९२वाँ (वर्ष का) दिन था। परमात्मा का विरह है। परिणाम ऐसे रहे नहीं। सभा में जाते थे, भगवान की साक्षात् वाणी अनेक बार सुनी। अन्त में मरते हुए... राजकुमार थे। घर में हाथी-घोड़ा, बड़ा राज्य, अरबों की आमदनी का, परन्तु मरते हुए परिणाम में जरा फेरफार हो गया, इसलिए यहाँ आये हैं। गरीब कठियावाड़ देश में। आहाहा! वह बात ही अलग है। प्रभु! तीन लोक के नाथ की कही हुई है। आहाहा! दुनिया को जरा कठिन लगता है। यह और नया कहाँ से निकाला? अभी तक तो कोई कहते नहीं थे। आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। यह अंगुली इसे स्पर्श नहीं करती। कौन माने? यह वीतराग ने कहा है और यह वीतराग... आहाहा! अबन्धक हैं। ऐसा कहा है, तथापि अबन्धक हैं। उनके परिणाम में राग नहीं है। यह सब वाणी इच्छा बिना निकली है। परमात्मा को इच्छा बिना वाणी निकलती है, इसलिए बन्धक नहीं है।

श्लोक-२८८

और (इस १७२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(मंदाक्रांता)

जानन् सर्वं भुवनभवनाभ्यन्तरस्थं पदार्थं,
पश्यन् तद्वत् सहजमहिमा देवदेवो जिनेशः।
मोहाभावादपरमखिलं नैव गृह्णाति नित्यं,
ज्ञानज्योतिर्हतमलकलिः सर्वलोकैकसाक्षी ।।२८८।।

(वीरछन्द)

भुवन-भवन में स्थित सर्व पदार्थ जानते अरु देखें।
मोहक्षीण है अतः किसी को भी कदापि नहिं ग्रहण करें॥
ज्ञान-ज्योति के द्वारा जिनने नष्ट किया मलरूपी क्लेश।
केवल ज्ञाता-दृष्टा रहते महिमामय वे देव जिनेश॥२८८॥

[श्लोकार्थः—] सहजमहिमावन्त देवाधिदेव जिनेश लोकरूपी भवन के भीतर स्थित सर्व पदार्थों को जानते हुए भी, तथा देखते हुए भी, मोह के अभाव के कारण समस्त पर को (-किसी भी परपदार्थ को) नित्य (-कदापि) ग्रहण नहीं ही करते; (परन्तु) जिन्होंने ज्ञानज्योति द्वारा मलरूप क्लेश का नाश किया है, ऐसे वे जिनेश सर्व लोक के एक साक्षी (-केवल ज्ञातादृष्टा) हैं।२८८।

श्लोक -२८८ पर प्रवचन

और (इस १७२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

जानन् सर्वं भुवनभवनाभ्यन्तरस्थं पदार्थं,
पश्यन् तद्वत् सहजमहिमा देवदेवो जिनेशः।

मोहाभावादपरमखिलं नैव गृह्णाति नित्यं,
ज्ञानज्योतिर्हतमलकलिः सर्वलोकैकसाक्षी ।।२८८।।

क्या कहते हैं ? **सहजमहिमावन्त देवाधिदेव जिनेश लोकरूपी भवन के भीतर...** पूरे लोक-ब्रह्माण्ड के अन्दर भगवान हैं। भगवान कहीं लोक के बाहर नहीं हैं। लोक के अन्दर रहते हैं। चौदह ब्रह्माण्ड है, उसमें भगवान हैं। आहाहा! है ? इस ओर श्लोक। **सहजमहिमावन्त...** जिनके आनन्द और ज्ञान की महिमा स्वाभाविक है। उसे कोई उपमा दे सके, ऐसी वह चीज़ नहीं है। ऐसा ही प्रभु इस आत्मा का स्वभाव है। जैसे वे भगवान हैं, वैसा ही यह भगवान है। ऐसे सब भगवान हैं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि भगवान **लोकरूपी भवन के भीतर...** नहीं रहते। वे लोक में नहीं रहते। अलोक में रहते हैं ? **लोकरूपी भवन के भीतर स्थित सर्व पदार्थों को जानते हुए भी,...** लोकरूपी भवन के अन्दर भले रहें **सर्व पदार्थों को जानते हुए भी, तथा देखते हुए भी, मोह के अभाव के कारण...** आहाहा! वे तो अपने में हैं। भाषा आकाश में है। वह भाषा निकलती है, वह जड़ से निकलती है। **मोह के अभाव के कारण समस्त पर को (-किसी भी परपदार्थ को) नित्य (-कदापि) ग्रहण नहीं ही करते;...** आहाहा!

भगवान अपने हाथ को भी ऊँचा नहीं करते। आहाहा! भगवान हिल सकते नहीं, हिल सकते नहीं। आकाश में अध्धर चलते हैं। वह जड़ की पर्याय जड़ से चलती है। आत्मा तो उसका जानने-देखनेवाला है। आहाहा! यह कहने का कारण यह कि सबका आत्मा ऐसा है। आहाहा! भगवान की बात चलती है परन्तु आत्मा सब अन्दर भगवान है। चैतन्यस्वरूपी पूर्ण भगवान विराजता है, परन्तु रंक को खबर नहीं होती। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण वीर्य का पिण्ड प्रभु अन्दर आत्मा है। वह है, वह प्रगट होता है। न हो, उसमें से प्रगट नहीं होता। प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर सब भगवान हैं। आहाहा! पूरी दुनिया द्रव्यदृष्टि से देखो; द्रव्य अर्थात् उसके स्वभावदृष्टि से देखो तो वे सब भगवान है। पर्याय में विकार है, उसके कारण भटकते हैं। आहाहा!

अभी पर्याय क्या कहलाती है ? और द्रव्य क्या कहलाता है ? (इसकी खबर नहीं होती)। आहाहा! द्रव्य—वस्तु। कायम रहनेवाली वस्तु को द्रव्य कहते हैं और उस द्रव्य

की वर्तमान अवस्था, हालत, दशा होती है। हालत, अंश, परिणमन को पर्याय कहते हैं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

मोह के अभाव के कारण समस्त पर को (-किसी भी परपदार्थ को) नित्य (-कदापि) ग्रहण नहीं ही करते;... आहाहा! पूर्ण दशा प्रगट हुई तो किसी को ग्रहण नहीं करते कि यह मेरा शिष्य है। भगवान तो ऐसे हैं। वे तो वीतराग अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के अनुभव में हैं। पर को जानते हैं, वह भी व्यवहार है। पर का कर्ता तो नहीं। अपने अतिरिक्त कोई परचीज़, भगवान को आहार और पानी और रोग, यह तो होता ही नहीं। आहाहा! परन्तु भगवान इसे स्पर्श भी नहीं करते। आहाहा! ऐसा जो भगवान परपदार्थ को नित्य ग्रहण नहीं करते। लो!

वहाँ (संवत्) १९९५ में। रामविजय वहाँ थे। (वे कहे), भगवान पहले समय में वाणी ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं। १९९५ की बात है। ४२ वर्ष हुए। कहा, यह बात मिथ्या है। भगवान ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं, यह है ही नहीं। भगवान वाणी ग्रहण करे और छोड़े, (यह मिथ्या बात है।) सुननेवाले को खबर नहीं होती और जयनारायण करे। सुननेवाले को खबर नहीं होती कि भगवान को वाणी निकले? वाणी न बोले? वाणी ग्रहे तब बोले न? वाणी को ग्रहे नहीं, वाणी को छोड़े नहीं, वाणीरूप परिणमे नहीं, वाणी को पकड़े नहीं। आहाहा! यह तो अभी णमो अरिहन्ताणं की यह व्याख्या है। ऐसी व्याख्या इस आत्मा की है। कहाँ दरकार है? यह दुनिया की धूल जरा मिले, पाँच-पच्चीस लाख जहाँ मिले और लड़का कुछ ठीक हो और स्त्री (रूपवान हो)... हो गया। गिरा कुँए में। आहाहा! अन्दर भिन्न भगवान है।

केवलज्ञानी सर्व को जानते हैं तो भी किसी को ग्रहण नहीं करते तो तू भी आत्मा है। तू आत्मा भी किसी को ग्रहण और त्याग नहीं कर सकता। समझ में आया? देखो! है न? **मलरूप क्लेश का नाश किया है... मोह के अभाव के कारण समस्त पर को (-किसी भी परपदार्थ को) नित्य (-कदापि) ग्रहण नहीं ही करते; (परन्तु) जिन्होंने ज्ञानज्योति द्वारा मलरूप क्लेश का नाश किया है, ऐसे वे जिनेश सर्व लोक के एक साक्षी (-केवल ज्ञातादृष्टा) हैं।** जानने-देखनेवाला है। अपने अतिरिक्त किसी शिष्य आदि को देते-लेते नहीं। वाणी है। अकेले वीतराग हैं। उन्हें अरिहन्त पद कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)